National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2016;1(5): 43-46
© 2016 NJHSR
www.sanskritarticle.com

Deonath Tripathi
CASS,SPPU,PUNE

Correspondence:
Dr.Deonath Tripathi
CASS,SPPU,PUNE

योगदर्शन में ज्ञानमीमांसा

देवनाथ त्रिपाठी

भारतीयदर्शन के प्रायः सभी संप्रदायों ने ज्ञान के स्वरूप के सन्दर्भ में, ज्ञान के ग्रहण के उपायों के सन्दर्भ में, और ज्ञान के प्रकार के सन्दर्भ में गहन विवेचना की है। ज्ञानमीमांसा और तत्त्वमीमांसा, इन दर्शन की दोनों विचारधाराओं में समानता देखने को मिलती है, दोनों परस्पर पूरक होते हैं, एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। कुछ लोग मन या बुद्धि की पृथक सत्ता नहीं स्वीकार करते, उसे वे जड के कार्य के रूप में ही स्वीकार करते हैं। दूसरी तरफ, कुछ ऐसे भी हैं जो चेतन को छोडकर जड की सत्ता नहीं स्वीकार करते। उनके अनुसार जड की सत्ता अविद्या या माया के चलते है। कुछ तो एसे भी दार्शनिक संप्रदाय हैं जो पारमार्थिक रूप से न तो जड की सत्ता स्वीकार करते हैं और न ही चेतन की। इस प्रकार दर्शन के संप्रदायों में इस सन्दर्भ में बहुत मतभेद है। योग सांख्य का समान तन्त्र है। सांख्य की तरह योग में भी पारमार्थिक दृष्टि से दो तत्त्व स्वीकृत हैं, प्रकृति और पुरूष, प्रकृति जड है और पुरूष चेतन, पुरूष प्रकृति से सर्वथा असङ्ग है। प्रकृति का विकास महदादि के माध्यम से चौबीस तत्त्वों में होता है। परमार्थतः पुरूष में कर्तृत्व नहीं है और प्रकृति की परिणामिनी बुद्धि अचेतन है, तथापि पुरूष और बुद्धि के बीच जो भेद है उसका ग्रहण न होने से पुरूष में कर्तृत्व और बुद्धि में चेतनत्व का भान होता है। जिस प्रकार स्वच्छ दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब भासित होता है उसी प्रकार अत्यन्त स्वच्छ बुद्धि में चेतन पुरूष का प्रतिबिम्ब भासित होता है जिस प्रकार प्रतिबिम्ब के माध्यम से मुख का दर्पण के साथ सम्बन्ध है, वास्तविक नहीं, जड़ पदार्थ, मन, इन्द्रिय ,और अहंकार, ये सभी इनके मूल कारण प्रकृति के परिणाम हैं ।प्रकृति के परिणामी होने से सत्त्व रजस् और तमस् ये तीन गुण प्रत्येक जड़ पदार्थ में विद्यमान रहते हैं ये सत्त्वादी परार्थ होते हैं इसलिए इन्हें गुण कहा जाता हैं जैसे मंत्री राजा के द्वारा किये जाने वाले कार्यों मैं सहायक होने से परार्थ होते हैं उसी प्रकार ये गुण पुरुष के भोग और अपवर्ग का साधक होने से परार्थ होते हैं वस्तुतः ये गुण संयोग विभाग से युक्त होने से और लघुत्व चलत्व और गुरुत्व धर्मों से युक्त होने से द्रव्य हैं गुण नहीं ।[१] सत्त्व सुखरूप है रजस दुःखरूप है और तमस् मोहरूप है सुख दुःख और मोह ये तीनों गुणों के धर्म हैं ये गुण परिणामस्वभाव वाले हैं प्रलय में भी इनसे परिणाम होता रहता है उस समय सत्त्व से सत्त्व का रजस् से रजस् का एंव तमस् से तमस् का परिणाम होता है जिसके रहने पर कहीं भी भय उत्पन्न नहीं होता और न तो किसी भी अवस्था में दुःख या विषाद की उपस्थिति होती है वह सत्त्व है ।रजोगुण दुःख का कारण होता है तमस् प्रवृत्तिविरोधी गुण है। प्रकृति का परिणामी होने से हमारा चित्त भी त्रिगुणात्मक है ।[२]

मन बुद्धि और अहंकार के समष्टिभूत अन्तःकरण का नाम ही चित्त है ।सत्त्व का प्रयोजन है प्रकाश करना रजस् का प्रयोजन है प्रवृर्त्त को पदार्थों में ही ये गुण विद्यमान हैं हमारी मानसिक संरचना भी इनसे सर्वथा सम्पृक्त हैं , अतः इनके रहस्य को समझना बहुत ही कठिन है । वाचस्पति मिश्र ने ग्राह्य और ग्रहण इन दो रूपों में इनका विभाग किया है । उनके अनुसार एक ओर उनमें व्यवसायात्मकता है तो दूसरी ओर व्यवसेयात्मकता। जब ये पदार्थों का ग्रहण करते हैं तब ये व्यवसायात्मक हैं और जब पदार्थों के रूप में ग्राह्य होते हैं

तब ये व्यवसेयात्मक हैं ।ग्राह्य के रूप में ये पञ्च तन्मात्रा, पञ्च महाभूत और उनसे बने भौतिक पदार्थों के रूप में विकसित होते हैं ग्रहण या ग्राहक के रूप में इनका विकास अहंकार और इन्द्रियों के रूप में होता है।[३]

चित् एवं ज्ञान इन दोनों शब्दों का प्रयोग उपनिषद् में मिलता है। सांख्ययोग और वेदान्त के अनुसार दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं , पर न्यायवैशेषिक के अनुसार दोनों में कोई अन्तर नहीं है । वेदान्त में ब्रह्म का स्वरूप ही सच्चिदानन्द है । ज्ञान उत्पत्तिविनाशशील है , वह सत्य भी हो सकता है , असत्य भी। जब वह सत्य है , तब वह प्रमाशब्दवाच्य है , और सत्य से भिन्न होने पर वह अप्रमा है । इस प्रकार ज्ञान प्रमा भी हो सकता है और अप्रमा भी । प्रकृत सन्दर्भ में यह विशेषरूप से अवधेय है कि विना चित् के इस ज्ञान की निष्पत्ति नहीं हो सकती ।

योगशब्द 'युजि समाधौ' इस धातु से निष्पन्न है , अतः इसका व्युत्पत्तिनिमित्त समाधि है । 'योगिश्चित्तवृत्तिनिरोधः' इस सूत्र के अनुसार चित्तवृत्तिनिरोध योगशब्द का प्रवृत्तिनिमित्त है । चित्त की व्रत्तियाँ हमें बहिर्मुख बनाती हैं, इनका निरोध करना ही योग का लक्ष्य है। चित्त की वृत्तियाँ पाचँ प्रकार कि मानी गई हैं, इनमें से कुछ क्लिष्ट हैं और कुछ अक्लिष्ट हैं ।रागद्वेषादि क्लेशों को उत्पन्न करने वाली वृत्तियाँ क्लिष्ट हैं और उनको नष्ट करने वाली वृत्तियाँ अक्लिष्ट हैं ।इन क्लिष्ट व अक्लिष्ट वृत्तियों के पाचँ प्रकार हैं – प्रणाम विपर्यय विकल्प निद्रा और स्मृति ।[४] प्रमाण के पुनः तीन भेद किए गए हैं – प्रत्यक्ष अनुमान एवं शव्द।[५] दर्शनान्तर में स्वीकृत अन्य प्रमाणों का भी इन्हीं में अन्तर्भाव हो जाता है। लोकायत केवल प्रत्यक्षप्रमाण मानता है ।बौद्ध और वैशेषिकदर्शन दो प्रमाण मानते हैं, प्रत्यक्ष और अनुमान। सांख्ययोग तीन प्रमाण मानते हैं, प्रत्यक्ष, अनुमान, और शब्द न्यायदर्शन चार प्रमाण मानता है, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और शब्द। वेदान्त छे प्रमाण मानता है, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, शब्द, एवं अनुपलब्धि।भाट्टमीमांसक भी वेदान्त की तरह छे प्रमाण मानते हैं। प्राभाकरमीमांसक अनुपलब्धि को छोड़कर केवल पाँच प्रमाण मानते हैं ।

प्रमाण से तात्पर्य उस चित्तवृति से है जो प्रमा को उत्पन्न करती है – प्रमाकरणं प्रमाणम्।चक्षुरादि इन्द्रिय से उत्पन्न होने के कारण चित्तवृत्ति प्रमा भी है और पौरुषेयबोध का करण होने से प्रमाण भी है। चक्षुरादि इन्द्रियाँ केवल प्रमाण हैं, जबकि पौरुषेयबोध केवल प्रमा है। इन्द्रिय के माध्यम से चित्त का विषयदेश में पहुँचकर विषयाकाराकारित होना चित्तवृत्ति है और विवेकाग्रह से इस वृत्ति को पुरुष के द्वारा अपना समझ बैठना फल है। यह विवेकाग्रह या अभेधग्रहण ही अस्मिता है ।[६] वस्तुतः प्रमा चित्तनिष्ठ या बुद्धिनिष्ठ है ,पारमार्थिकरूप से पुरुष असङ्ग है, अतः वह बोध, ज्ञान, या प्रमा का आधार नहीं बन सकता। अतः यही मानना तर्कसङ्गत है कि प्रमाख्यफल का पुरुष में उपचार होता है, न कि वह वस्तुतः प्रमा का आश्रय है।[७]प्रत्यक्षप्रमाण में प्रमेय का विशेषरूप से भान होता है, यद्यपि प्रमेय सामान्य व विशेष दोनों से युक्त है। कुछ लोगों के अनुसार वस्तु जाति है , कुछ के अनुसार व्यक्ति है, कुछ दूसरों के अनुसार जाति और व्यक्ति वस्तु के धर्म हैं। पर व्यासभाष्य के अनुसार जाति और व्यक्ति वस्तु के धर्म नहीं हैं, अपितु वस्तु जाति और व्यक्ति दोनों से अभेद सम्बन्ध से युक्त है।[८] प्रत्यक्षप्रमाण की विशेषावधारणावृत्ति प्रत्यक्ष को अनुमान और आगम से पृथक करती है। विशेषावधारणावृत्ति से तात्पर्य है बोध में विशेष का प्रबल होना और सामान्य का गौण होना, न कि सामान्य का सर्वथा अभाव होना। इस प्रकार चक्षुरादि इन्द्रियों के विषय के साथ सन्निकर्ष के द्वारा उदित होने वाली चित्तवृत्ति प्रत्यक्षप्रमाण है, लिङ्गज्ञान से उदित होने वाली चित्तवृत्ति अनुमानप्रमाण है; वह अनुमेय का तुल्यजातियों में अनुगत और भिन्नजातियों से व्यावृत्त सम्बन्ध को विषय बनाने वाली सामान्यावधारणावृत्ति है । आप्तवाक्यों को सुनने पर वाक्यार्थ के विषय में उदित होने वाली चित्तवृत्ति आगमप्रमाण है।

विपर्यय वह चित्तवृत्ति है जो मिथ्यारूप में प्रतिष्ठित है।[९] इसको अतस्मिस्तद्बुद्धिः, अतस्मिस्तद्ग्रहः इत्यादि शब्दों से भी कहा गया है। जहाँ जिस वस्तु का अभाव है वहाँ यदि उस वस्तु का अनुभव हो तो वह अनुभव विपर्यय कहलाता है।यह वस्तु के वास्तविक स्वरूप का बोध नहीं कराती और प्रमाण के द्वारा बाधित हो जाती है। इसे भ्रमज्ञान भी कहते है, यथा रज्जु में सर्प का ज्ञान, शुक्ति में रजत का ज्ञान,द्विचन्द्रदर्शन इत्यादि।इसके विषय में विभिन्न दार्शनिकों के विभिन्न मत हैं, उन सभी का संग्रह ख्यातिपञ्चक में हो जाता है। आत्मख्याति असत्ख्याति अख्याति अन्यथाख्याति और अनिवर्चनीयख्याति ये पाँच मत बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रथम दोनों बौद्धदर्शन की अभिमत ख्यातियाँ हैं। तीसरी मीमांसादर्शन कि अभिमत ख्याति है। चौथी न्याय वैशेषिकदर्शन से सम्बद्ध है और पाचवीं वेदान्त दर्शन से। इन पञ्चख्यातियों से अतिरिक्त सदसत्ख्याति है जो सांख्ययोग में प्रचलित है। वाचस्पति मिश्र और विज्ञानभिक्षु के अनुसार संशय का भी अन्तर्भाव विपर्यय में हो जाता है। इस वृत्ति को पाँच भागों में विभक्त किया गया है,अविद्या,अस्मिता,राग, द्वेष, और अभिनिवेश।इन सभी में अविद्या सामान्यरूप से है, अतः ये सभी क्लिष्ट होने से त्याज्य हैं।अनात्मवस्तुओं में आत्मबुद्धि रखना अविद्या है। अश्रेयस् में श्रेयस् का व्यवहार अस्मिता है।अष्टविध ऐश्वर्यों के माध्यम से दृष्टानुश्रविकविषयों में आसक्ति रखना राग है।इन विषयों के प्रति प्रवृत्ति के प्रतिबन्ध पर उत्पन्न होने वाला क्रोध द्वेष है। अष्टविध ऐश्वर्यों के माध्यम से प्राप्त होने वाले दृष्टानुश्रविकविषय कल्पान्त में नष्ट हो जाएंगे, इस प्रकार का डर अभिनिवेश है। केवल शब्दज्ञान पर आश्रित वृत्ति का नाम विकल्प है, यह वृत्ति वास्तविकता से परे है,अतः इसे वस्तुशून्य कहा गया है।[१०] 'चैतन्यम् पुरुषस्य स्वरुपम् ' इस वाक्य में चैतन्य पुरुष से व्यतिरिक्त अन्य पदार्थ नहीं है, यहाँ वस्तुतः अभेद में विशेष्य-विशेषणभाव की कल्पना है। राहोः शिरः इत्यादि अन्य उदाहरण भी दिये जा सकते हैं, जहाँ राहु से पृथक शिर अन्य पदार्थ नहीं है। अभेद में भेद की कल्पना कर और भेद में अभेद की कल्पना कर शब्दप्रयोग में इस वृत्ति की सार्थकता है। शब्दज्ञान के पश्चात् वृत्ति के आधार पर व्यवहार होने से इसका न तो प्रमाण में और न ही विपर्यय में अन्तर्भाव हो सकता है।[११]

निद्रा वह चित्तवृत्ति है जिसका उदय सुषुप्ति अवस्था में होता है। इस अवस्था में तमोगुण का प्राधान्य होने पर भी गौणीभूत रजोगुण के प्रभाव से आभाव कि प्रतीति होती है।[१२] जैसे अन्धेरे में कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, पर अन्धकार का भान रहता है जो वस्तुओं के आभाव की प्रतीति कराता है, वैसे ही सुषुप्ति अवस्था में तमोगुण से अभिभूत रजोगुण भी आभाव की प्रतीति कराने में सक्षम है।

स्मृति अनुभूतविषय का असंप्रमोष है।[१३] संप्रमोष का तात्पर्य है स्तेय या चोरी, इसके विपरीत अर्थ का द्योतक है असंप्रमोष। स्मरण अनुभवजन्य है, इस तथ्य में कोई विवाद नहीं है। स्मृति का स्वजनक अनुभव के विषय से अधिक विषय को ग्रहण करना संप्रमोष है। पर यह अनुभवसिद्ध है कि स्मृति अनुभूतविषय का ही ग्रहण करती है, उससे अधिक का नहीं। स्मृति का विषय अनुभव से बराबर या उससे कम हो सकता है, पर उससे अधिक नहीं हो सकता, यही असंप्रमोष का अभिप्रेतार्थ है। न्यायवैशेषिक के अनुसार अनुभव दो प्रकार का होता है, यतार्थ और अयतार्थ, अतः स्मृति के भी दो भेद हो जाते हैं, यतार्थ और अयतार्थ। योगदर्शन में भी दो प्रकार की स्मृति वर्णित है, भावितस्मर्तव्या, अभावितस्मर्तव्या। वाचस्पति मिश्र के अनुसार भावितस्मर्तव्या वह स्मृति है जिसका विषय कल्पित है- 'भावितः कल्पितः स्मृर्तव्यो यया सा तथोक्ता'।[१४] व्यास के अनुसार यह स्मृति स्वप्नकालिक है- 'स्वप्ने भावितस्मृव्या'।[१५] विज्ञानभिक्षु के अनुसार भावितस्मर्तव्या स्मृति से भविष्य में होने वाले अर्थ की सूचना मिलती है। वाचस्पति मिश्र अभावितस्मर्तव्या स्मृति को यथार्थ विषयक मानते हैं, जबकि विज्ञानभिक्षु ने इसे भविष्य के अर्थ को न विषय बनाने वाला बताया है ।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः इस पातञ्जलसूत्र के अनुसार साधक उपर्युक्त पाँच वृत्तियों का योगदर्शन में वर्णित साधनों के द्वारा निरोध कर कैवल्य को प्राप्त कर लेता है। ये वृत्तियाँ क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो प्रकार की हैं, रागद्वेषादि की हेतुभूतवृत्तियाँ क्लिष्ट हैं और इन क्लिष्टवृत्तियों को नष्ट करने वाली वृत्तियाँ अक्लिष्ट हैं। चित्त एक नदी है जिसमें वृत्तियों का प्रवाह निरन्तर हो रहा है, इन वृत्तियों के प्रवाह के दो मार्ग हैं, संसाररूपी मार्ग और संसार से निवृत्ति का मार्ग। पहला मार्ग जन्म लेने भर से खुल जाता है, जबकि दूसरा मार्ग शास्त्रचिन्तन, गुरुसेवा, ईश्वरप्रणिधान इत्यादि माध्यमों से खुलता है। यह दूसरा मार्ग ही वह

कल्याणकारी मार्ग है जो मानवजाति के लिए अभीष्ट है और जिसका निर्देश योगदर्शन में किया गया है। वृत्तियों के निरोध में जो उपाय हैं उन्हें अष्टाङ्गयोग के नाम से जाना जाता है, इन अङ्गों में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, और प्रत्याहारये पाँच बहिरङ्ग साधन हैं इनकी सिद्धि में अभ्यास सहायक है। धारणा,ध्यान, और समाधि ये तीन आन्तरिक साधन हैं जिनकी सिद्धि में वैराग्य अत्यधिक सहायक है।

सन्दर्भ सूची :-

१. सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टम्भकं चलञ्च रजः गुरुवरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः। सांख्यकारिका-१३
२. चित्तं हि प्रख्याप्रवृत्तिस्थितिशीलत्वात् त्रिगुणम्। वात्स्यायनभाष्य योगसूत्र- १/२ ।
३. गुणानां हि द्वैरुप्यं व्यवसेयात्मकत्वं व्यवसायात्मकत्वंञ्च। तत्र व्यवसेयात्मकतां ग्राह्यतामास्थाय पञ्च तन्मात्राणि भुतभौतिकानि निर्मिमीते। व्यवसायात्मकत्वं तु ग्रहणरूपमास्थाय साहङ्काराणीन्द्रियाणीत्यर्थः। वाचस्पति मिश्र, ३/४७, पातञ्जलयोगसूत्राणी, आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलि।
४. प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः। योगसूत्र -१/६
५. प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि । योगसूत्र -१/७
६. दृग्दर्शन कत्योरेकात्मतेवास्मिता । योगसूत्र -२/६
७. द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः । योगसूत्र -२/२०
८. इन्द्रियप्रणालिकया चित्तस्य बाह्यवस्तूपरागात्तद्विषया सामान्य विशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारणप्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षं प्रमाणम्।
९. विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्। योगसूत्र -१/८
१०. शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः । योगसूत्र -१/६
११. स न प्रमाणोपारोही। न विपर्ययोपारोही च। वस्तुशून्यत्वेऽपि शब्दज्ञानमाहात्म्यनिबन्धनो व्यवहारो दृश्यते। व्यासभाष्य-१/६, क्वचिदभेदे भेदमारोपयति क्वचित्पुनभिन्नानामभेदम्। ततो भेदस्याभेदस्य च वस्तुनोऽभावात्तदाभासो विकल्पो न प्रमाणम् नापि विपर्ययो व्यवहाराविसंवादादिति। वाचस्पति मिश्र,१/६
१२. आभावप्रत्ययालम्बनावृत्तिनिद्रा। योगसूत्र -१/१०
१३. अनुभूत विषयासंप्रमोषः स्मृतिः । योगसूत्र -१/११
१४. तत्त्व वैशारदी, योगसूत्र -१/११
१५. व्यासभाष्य, योगसूत्र -१/११